आर्थिक दृष्टिकोण : एशिया और भारत के विषय में कुछ विचार *

या.वे.रेड्डी

इस 18 वें वार्षिक फोरम में भाग लेते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इस चर्चा के लिए विषय बड़ा व्यापक है लेकिन यहां बहुत से लब्ध प्रतिष्ठ वक्ता मौजूद हैं जो इस जटिल और अत्यंत प्रासंगिक विषय से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे। मेरा हिस्सा पहला हिस्सा है और मैं एशियाई अर्थव्यवस्था, विशेषकर एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं (ए ई एम ई) में नीति निर्धारकों द्वारा सामना की जा रही सामान्य चुनौतियों का सामान्य हवाला दूंगा। दूसरा हिस्सा भारतीय अर्थव्यवस्था, इसके वृद्धि कार्य निष्पादन, ताकतों और प्रमुख चुनौतियों को समर्पित होगा। तीसरा और अंतिम हिस्सा अत्यंत संक्षिप्त होगा जिसमें समष्टि आर्थिक, विशेषकर भारत में मौद्रिक प्रबंध हेतु मौजूदा प्राथमिकताओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

वैश्विक अर्थव्यवस्था में एशियाई अर्थव्यवस्थाओं का स्थान

यह कहना तर्क संगत है कि एशियाई क्षेत्र की अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक अर्थव्यवस्था में वृद्धि के नए इंजनों के रूप में उभर रही हैं। एशिया दस बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से तीन (चीन, जापान और भारत) का पोषक है और विश्व के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में इसका हिस्सा 35 प्रतिशत से अधिक है। आज विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में एशिया का हिस्सा यूरोपीय संघ और अमरीका से अधिक हो गया है (अं. मु. को., 2006)। विश्व की सबसे तेज वृद्धिशील अर्थव्यवस्थाएं होने के कारण पिछले दो वर्ष में चीन और भारत ने एशियाई वृद्धि में 73 प्रतिशत और वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि में 38 प्रतिशत का योगदान दिया है (अं. मु को., 2005)। जापान में हालात सुधरने के साथ ही आशा की जाती है कि यह एशियाई के साथ-साथ वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धि का दूसरा इंजन होगा। इस प्रकार, विकास के चार स्तंभ - जापान, पूर्वी एशिया, चीन और भारत - जो मिलकर एक तरह का

* विला डी एस्टे इन सेरनोब्बिओ, इटली में एम्ब्रोसेट्टी, द यूरोपियन हाउस द्वारा ''द आउटलुक फॉर फायनांशियल मार्केट्स, फॉर देयर गवर्नेंस, एण्ड फॉर फायनांस'' विषय पर आहूत 18 वें वार्षिक फोरम में 30 मार्च 2007 को डा. या.वे रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दिया गया भाषण।

चतुर्भुज निर्मित करते हैं - एशिया में उभर रहे हैं और ये अब आगे चलकर वैश्विक विकास इंजिन बने रहने के नए स्रोत होंगे। यह जानना रोचक है कि क्रय शक्ति समानता के आधार पर सकल घरेलू उत्पाद के अर्थ में सर्वोच्च चार अर्थव्यवस्थाओं के बीच इस चतुर्भुज की तीन एशियाई अर्थव्यवस्थाएं यथा - चीन, जापान और भारत का स्थान क्रमशः दूसरा, तीसरा और चौथा है।

वित्तीय स्थिरता और वैश्विक व्यापार में एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के बढ़ते महत्व को स्वीकार करना भी महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए एशिया के अनेक देशों द्वारा विदेशी मुद्रा भंडार का सतत काफी संचय हुआ है जो शेष विश्व से इस क्षेत्र के बढ़ते व्यापार और वित्तीय एकीकरण को दर्शाता है। आज, एशिया के पास 3 ट्रिलियन अमरीकी डालर का विदेशी मुद्रा भंडार है जोकि विश्व के कुल विदेशी मुद्रा भंडार का 62 प्रतिशत है। इसके अलावा, एशियाई क्षेत्र क्रमिक रूप से विश्व व्यापार, वैश्विक पूंजी प्रवाहों तथा अन्य समष्टि आर्थिक मानकों का एक प्रमुख केंद्र हो गया है। आज विश्व व्यापार में एशिया का योगदान काफी बढ़ गया है और यह लगभग 27 प्रतिशत हो गया है।

एशियाई आर्थिक एकीकरण का गणित

एशिया के भीतर एकीकरण बढ़ रहा है जैसा कि अंतर-क्षेत्रीय व्यापार प्रवाहों में परिवर्तन के कदम में परिलक्षित है। अंतर-क्षेत्रीय व्यापार बढ़ रहा है क्योंकि देशों ने क्षेत्रीय आपूर्ति श्रृंखला के विभिन्न चरणों में अपना स्थान बना लिया है। चीन और भारत का उत्थान न केवल एशिया का विकास कर रहा है बल्कि अधिक एकीकृत होने में सहायता कर रहा है। एशियाई देश एक ऐसा ससंजित एशियाई समुदाय सृजित करने के लिए काम कर रहा है जो पूरक विकास और सकारात्मक स्पर्धा दोनों की अनुमति देगा। यह चमत्कार एशिया में मुक्त व्यापार करारों (एफटीए) की एक व्यूह रचना की बदौलत सुसाध्य बना है। इस क्षेत्र के कुल व्यापार के एक हिस्से के रूप में अंतर एशियाई व्यापार 1980 के 30 प्रतिशत से बढ़कर 2004 में 50 प्रतिशत से अधिक हो गया है (अं.मु.को., 2006)। 10 वर्ष से भी कम समय में चीन और शेष एशिया के बीच होने वाला व्यापार चार गुना बढ़ा है; चीन और जापान / कोरिया के बीच का व्यापार उसी अवधि में तिगुना हो गया है; अंतर-आसियान व्यापार दुगुना हो गया; और आसियान देशों तथा भारत के बीच व्यापार तिगुना हो गया (मंडेलसन, 2005)। हाल के वर्षों में एशिया के अंदर उत्पादन और व्यापार के संघटन में एक सतत जोरदार कायापलट चल रहा है क्योंकि कई एशियाई अर्थव्यवस्थाओं को मिलनेवाले तुलनात्मक लाभ लगातार बदल रहे हैं। खास तौर से ऊंचे वेतन लागत वाली अर्थव्यवस्थाएं सेवाओं सहित अपेक्षाकृत ऊंचे मूल्यवर्धित उत्पादों की ओर झुक रही हैं। श्रम साध्य विनिर्माण कार्यों का हांगकांग से बाहर चीन की मुख्य भूमि की ओर पलायन और वित्तीय सेवाओं में व्यापार की वृद्धि से हांगकांग की अर्थव्यवस्था से जुड़ा उछाल संभवतः इस सतत प्रक्रिया का सर्वाधिक सटीक उदाहरण है।

इस क्षेत्र के भीतर वित्तीय प्रवाह भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। हालांकि एशिया के विकासशील देश अभी भी क्षेत्र की विदेशी मुद्रा बचतों की मध्यस्थता के लिए लंदन और न्यूयार्क पर भरोसा करते हैं। जापान लगातार विश्व का सबसे बड़ा पूंजी निर्यातक बना हुआ है। फिर भी, हांगकांग और सिंगापुर भी अपने बहुत बढ़िया पूंजीकृत बैंकों, दक्ष समाशोधन एवं निपटान प्रणालियों तथा वित्तीय उत्पादों की बढ़ती जा रही रेंज के साथ प्रमुख वित्तीय केंद्रों के रूप में उभरे हैं। क्रमिक रूप से ये केंद्र एशिया के भीतर बचतों के विनियोजन में मध्यस्थन करने के साथ-साथ विश्व के अन्य भागों से भी एशिया की ओर बचतों का प्रवाह प्रशस्त करते हैं। विशेष रूप से, हांगकांग चीन में

निवेश हेतु मुख्य मार्ग है और एशिया के संघीय उधारों के एक महत्त्वपूर्ण भाग की व्यवस्था करता है। सिंगापुर की भी अपनी भूमिका है और यह दक्षिण पूर्व एशिया के मुख्य बैंकिंग केंद्र के रूप में उभरा है।

एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं : मौजूदा संदर्भ में कुछ सामान्य बातें

वैश्विक अर्थव्यवस्था में एशियाई अर्थव्यवस्थाओं का बढ़ता महत्त्व तथा एशियाई आर्थिक एकीकरण का गणित भी विश्व अर्थव्यवस्था में उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के एक द्वितीयक सेट के रूप में एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के बढ़े हुए महत्त्व को दर्शाता है। हालाँकि एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं अपनी आर्थिक प्रणालियों, संरचना और आकार में समरूप नहीं हैं लेकिन वर्तमान संदर्भ में कुछ सामान्यीकरण पर विचार करना उपयोगी होगा क्योंकि जब कभी देश विशेष के संदर्भ पर फोकस होगा तब इस सामान्यीकरण की कठोर सीमाएं होंगी। एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए जापानी अर्थव्यवस्था में होने वाली गतिविधियां बहुत महत्त्व रखती हैं और जापानी अर्थव्यवस्था में पुनरुत्थान के संकेतों को स्वीकार करते हुए इस क्षेत्र में काफी प्रायोगिक अनुसंधान की संभावना है। अनिवार्यतः जो भी वर्णन आता है वह एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं से संबंधित रहता है और अनुकूल कारकों के साथ प्रारंभ होता है।

पहला, उन्हें इस समय अपने निर्यातों के लिए मजबूत वैश्विक मांग, अनुकूल व्यापार शर्तें और बाह्य वित्तपोषण के लिए सहज पहुंच का लाभ मिल रहा है।

दूसरा, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के प्रतिशत के रूप में कम बाह्य ऋण के साथ-साथ अच्छा विदेशी मुद्रा भंडार किसी भी प्रकार के अचानक बाह्य आघातों के सामने एक कुशन के रूप में कार्य करता है।

तीसरा, हालाँकि कुछ एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में लोक ऋण का स्तर अभी भी ऊंचा बना हुआ है तथा स्थानीय मुद्रा के अधिक अनुपात के साथ इस ऋण का अधिकांश भाग अभी भी बड़ी परिपक्वता का है।

चौथा, पुनर्व्यवस्था के माध्यम से बैंकिंग प्रणाली सुदृढ़ बनाई गई है और पर्यवेक्षी प्रणालियां समुन्नत हुई हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं में से अधिकांश में वित्तीय बाजारों का काफी विकास हुआ है।

पांचवां, विनिमय दर जोखिमों के प्रति तुलनपत्र के कम एक्सपोजर, ऋण संरचनाओं में पुनर्वित्तीयन की कम जोखिमों और सुदृढ़ वित्तीय प्रणालियों के संयोग तथा इन सबसे ऊपर अपेक्षाकृत अधिक नीतिगत नमनीयता के लिए पाई गई प्रवृत्ति से बाह्य आघातों को सहने की नमनीयता में मजबूती आई है।

छठा, अधिकांश अर्थव्यवस्थाएं सुदृढ़ वृद्धि-निष्पादन दर्शा रही हैं और मंहगाई प्रत्याशाओं की लगाम काफी अच्छी तरह नियंत्रण में है।

तथापि, तेजी से बढ़ रही एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं द्वारा अनेक कठिनाइयों का सामना किया जा रहा है, विशेषकर वृद्धि के आवेग को बरकरार रखते हुए बड़ी कठिनाई से पाई गई स्थिरता को बनाए रखने में।

पहला, हालांकि एशिया में वृद्धि के आवेग जोरदार हैं और तेल मूल्यों में राहत आने से मंहगाई का दबाव घटना चाहिए लेकिन मंहगाई के दबाव के बारे में चिंता यह है कि अतिरिक्त पूंजी प्रवाहों द्वारा संचालित ढेर सारी नकदी और तेजी से बढ़ रहे क्रेडिट से इसे मजबूती मिल रही है। एशिया में आ रहे सुदृढ़ पूंजी अंतर्वाह मौद्रिक प्रबंध के समक्ष एक चुनौती खड़ी कर रहे हैं। जबकि चालू खाते में आधिक्य की स्थिति वाले देशों की करेंसियों में कुछ वृद्धि स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है। समष्टि आर्थिक नीति

को घरेलू आपूर्ति और मांग की बातों की मजबूरियों द्वारा मुख्यतः नियंत्रित करने की आवश्यकता है। करेंसियों में चढ़ाव या उतार कभी-कभी गहन और अचानक हो सकता है, परिणामस्वरूप वास्तविक अर्थव्यवस्था के छिन्न-भिन्न हो जाने की संभावना रहती है और इसलिए विदेशी मुद्रा बाज़ारों में ज्यादा अस्थिरता को नियंत्रण में रखने की आवश्यकता है। इसके अलावा, निधियों के निष्प्रभावीकरण की लागत अक्सर राजकोषीय, बैंकिंग और केंद्रीय बैंक के तुलनपत्रों के बीच बांटनी पड़ती है। जबकि, पूंजी अंतर्वाहों में वृद्धि को पूरा करने के लिए उदार पूंजी बहिर्वाहों की सिफारिश की जाती है। वास्तव में वे उस समय घटित नहीं होते जब वे उदार बनाए जाते हैं। इसके अलावा, वित्तीय बाजारों की गहनता मध्यावधि में बड़े पूंजी अंतर्वाहों को सोखने में सहायक हो सकती है लेकिन इससे बहुत सी एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय क्षेत्र के विकास के मौजूदा चरण में तत्काल सहायता नहीं मिल पाएगी, विशेषकर, तब जब प्रवाहों की गति और मात्रा दोनों ही बहुत ज़्यादा हों।

दूसरा, स्थानीय करेंसी बाजारों विशेषकर बांड बाजारों को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं। तथापि, कुछ एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय बाजारों में बड़े खिलाड़ियों के परिचालनों का झुकाव अपने देश की आवश्यकताओं के बजाए अपनी वैश्विक आवश्यकताओं के प्रति ज्यादा रहता है। इसके अलावा, इन अर्थव्यवस्थाओं में कार्यरत कुछ बहुराष्ट्रीय वित्तेतर कंपनियों के खज़ाना परिचालन बड़े हो सकते हैं और उनके ये परिचालन अक्सर वित्तीय बाजारों में जोखिमों के मूल्यांकन को थोड़ा कठिन बना देते हैं। हालांकि बहुत सी एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में पर्यवेक्षण कौशल सुदृढ़ बनाया गया है जबकि नए लिखत विशेषकर व्युत्पन्नी उत्पाद (डेरिवेटिव्स), नए खिलाड़ी जैसे कि हेज फंड और काउंटर पर (ओटीसी) होने वाले बड़े परिचालनों की प्रवृत्ति जोखिमों को घटाने और उन्हें इधर-उधर करने की रहती है और इस प्रकार नीतिगत प्रयोजनों के लिए उनका आकलन कभी-कभी कठिन हो जाता है।

तीसरा, बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ बनाया गया है और गैर बैंकिंग मध्यस्थन का विस्तार किया गया है जिससे बहुत सी एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय क्षेत्र को स्थिरता और दक्षता, दोनों मिली हैं। लेकिन कभी-कभी, स्थानीय जन नीति प्राथमिकताओं के साथ बड़े फायनांशियल कांग्लोमरेटों और विदेशी संस्थानों के परिचालनों का तालमेल बिठाना बहुत सी एशियाई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए चुनौती बना हुआ है। इसके अलावा, बहुत सी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय क्षेत्र में स्पर्धा कुछ-कुछ सीमित है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बड़े खिलाड़ी एक दूसरे से जबरदस्त प्रतिस्पर्धा करते हैं जबकि हो सकता है उनमें से कुछ ही ऐसे होंगे जो एशियाई वित्तीय बाजारों में हावी रहेंगे। इस प्रकार वित्तीय मध्यस्थों में से कुछ ही इन देशों के वित्तीय बाजारों में अपना वर्चस्व संभाले रखेंगे जिससे जोखिम का संकेंद्रण बढ़ता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का निष्पादन

भारतीय अर्थव्यवस्था में रुचि व्यापक और गहन है लेकिन स्मरण मात्र के द्वारा आर्थिक निष्पादन के कुछ पहलुओं का उल्लेख करना उपयोगी होगा।

पहला, 1980-81 (अप्रैल से प्रारंभ वित्तीय वर्ष) से 25 वर्ष की अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था की औसत वृद्धि दर विगत दो वर्षों में औसतन 9.1 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ लगभग 6.0 प्रतिशत रही है।

दूसरा, हाल के वर्षों में अर्थव्यवस्था ने काफी नमनीयता (रेजीलिएन्स) दर्शाई है जैसा कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में अनेक आघातों के विपरीत संक्रमण

प्रभाव के परिहार तथा तेल मूल्यों में वृद्धि के साथ सामंजस्य बनाए रखने की क्षमता में परिलक्षित है। हाल के वर्षों में आर्थिक गतिविधि के सुदृढ़ीकरण को 2001-02 में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 22.9 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 33.8 प्रतिशत तक की घरेलू निवेश दर में सतत वृद्धि और पूंजी के ज्यादा दक्ष उपयोग से समर्थन मिला है। उसी अवधि में घरेलू बचत दर भी 23.5 प्रतिशत से सुधरकर 32.4 प्रतिशत हो गई है। हालांकि सेवा क्षेत्र समग्र सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 60 प्रतिशत हिस्से के साथ लगातार वृद्धि का वाहक बना हुआ है और समग्र वृद्धि में लगभग तीन-चौथाई हिस्से का योगदान दे रहा है। हाल के वर्षों में ध्यान देने योग्य बात यह हुई है कि औद्योगिक क्षेत्र में सतत सुधार जारी है, विशेषकर विनिर्माण क्षेत्र में, जिसे घरेलू मांग के साथ-साथ निर्यात मांग का समर्थन मिला हुआ है।

तीसरा, बाह्य पूंजी प्रवाहों और तेल मूल्यों में सतत तीव्र वृद्धि के बावजूद 1990 की दूसरी छमाही से मुद्रास्फीति की दर कमोबेश अनुकूल रही है। हाल ही की अवधि में, हेडलाइन मुद्रा स्फीति, जोकि थोक मूल्य सूचकांक से मापी गई है, अपेक्षाकृत ऊंची रही है और जनवरी-मार्च 2007 में यह 6.0 प्रतिशत के स्तर को पार कर गई जोकि इस समय चिंता का विषय है।

चौथा, सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक का सामान्य उद्देश्य यह रहा है कि मध्यावधि में वार्षिक मुद्रास्फीति का स्तर 5 प्रतिशत के नीचे रखा जाए। इस संबंध में स्वागतयोग्य बात यह है कि सरकार की राजकोषीय स्थिति, केंद्र और राज्य दोनों ही, राजकोषीय घाटा संकेतकों में कमी करने के लक्ष्य के अर्थ में समेकन से गुजर रही है। अनेक राज्यों की राजकोषीय स्थिति में सुधार विशेष रूप से जोरदार है।

पांचवां, वित्तीय क्षेत्र ने, स्पर्धा, विनियामक उपायों, नीतिगत वातावरण और बैंकों सहित बाजार खिलाड़ियों के बीच प्रेरक माहौल के सम्मिलित प्रयास से अपेक्षाकृत अधिक शक्ति, दक्षता और स्थिरता अर्जित कर ली है। रिज़र्व बैंक के चलनिधि प्रबंध के अनुरूप नाना प्रकार की निवेश आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए मौद्रिक नीति संचालन को सुसाध्य बनाकर मुद्रा बाजार क्रमिक रूप से विकसित किया गया है। सरकारी प्रतिभूति बाजार लिखतों/प्रक्रियाओं और सहभागियों के अर्थ में काफी गहन, चलनिधि पूर्ण और सक्रिय तथा पूर्ण विकसित है। रुपए की विनिमय दर काफी लचीली रही है, विशेष रूप से पिछले कुछ वर्षों में और विदेशी मुद्रा बाजारों के टर्नओवर में पर्याप्त वृद्धि हुई है। शेयर बाजार विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए खोल दिया गया है और बाजार पूंजीकरण, टर्नओवर और प्रणालियों तथा प्रक्रियाओं के अर्थ में प्रमुख अंतरराष्ट्रीय इक्विटी बाजारों से इसकी तुलना की जा सकती है। कंपनी (कार्पोरेट) ऋण बाजार भारत में अल्प विकसित है लेकिन इसमें विशेष रूप से बुनियादी संरचना परियोजनाओं, आवास निर्माण और कंपनी तथा नगरपालिका आवश्यकताओं के लिए संसाधन संग्रहण की भारी संभावनाएं हैं।

छठा, दो वर्षों के न्यूनतम आधिक्य के पश्चात चालू खाता घाटा बहुत संतुलित स्तरों पर बनाए रखने के साथ ही भारत का बाह्य क्षेत्र नमनीय हो गया है। पिछले तीन वर्षों के दौरान निर्यात लगभग 25 प्रतिशत की औसत दर से बढ़ते रहे हैं। सेवा निर्यात और विप्रेषणों में जारी वृद्धि ने अदृश्य मदों के खाते में आधिक्य के सतत उछाल की प्रवृत्ति बनाए रखी जिससे व्यापार घाटे के एक बड़े भाग का वित्तपोषण किया जा सका। 200 बिलियन अमरीकी डालर के आसपास विदेशी मुद्रा भंडार के साथ पूंजी खाते में सार्थक दृढ़ता थी और यह भंडार सितंबर 2006 के अंत में लगभग 140 बिलियन अमरीकी डालर के देश के बाह्य ऋण से वर्तमान में अधिक है और इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था की परिष्कृत ऋणशोधन क्षमता को दर्शाता

है। तथापि रोज़गार और इस प्रकार सामाजिक प्रशांति सुनिश्चित करने के लिए वैश्विक स्पर्धा का सामना करने के लिए जरूरी मानव कौशल प्रदान करने वाला कार्य शायद सबसे ज्यादा हतोत्साहित करनेवाला कार्य है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए चुनौतियां

निःसंदेह रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बहुत चुनौतियां हैं, लेकिन उनमें से कुछ पर फोकस करना उपयोगी है: मैं कह सकता हूं कि विश्लेषक, जोकि भारतीय अर्थव्यवस्था में होनेवाली गतिविधियों पर नज़र रखते हैं, की नज़र में ''सामान्य शंकाएं'', निम्नानुसार हैं।

पहली बात, मात्रा और गुणवत्ता दोनों ही अर्थों में भौतिक संरचना की दयनीय स्थिति बहुतों के द्वारा भारत की प्रगति में सबसे बड़ा रोड़ा मानी जाती है। यहां सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा विनियामक ढांचा और समग्र निवेश वातावरण है जिसकी समस्या सरकार द्वारा दूर की जा रही है। तकनीकी गतिविधियों और घरेलू भवन निर्माण क्षमताओं के तेजी से विस्तार को तेज और दक्ष कार्यान्वयन की प्रक्रिया में सहायक होना चाहिए। घरेलू वित्तीय क्षेत्र की शक्तियों और विदेशी निवेशकों की बढ़ी हुई रुचि को देखते हुए निधीयन को कोई गंभीर समस्या नहीं खड़ी करनी चाहिए। एक अन्य चिंता बुनियादी संरचना में लागत वसूली की रही है जिसके ज्यादा सरकारी - निजी साझेदारी से सुधरने की आशा है। पुनश्चः विनिर्माण और सेवाओं में तेज वृद्धि के चलते शहरी संरचना और शहरी सेवाओं की उपलब्धता और गुणवत्ता पर एक जबरदस्त दबाव पैदा हो गया है।

दूसरी बात, राजकोषीय समेकन अभी भी चिंता का विषय बना हुआ है, विशेषकर रेटिंग एजेंसियों की आंखों में। केंद्र सरकार के हाल के बजट से समेकन पटरी पर आया है। भारतीय रिज़र्व बैंक में राज्यों के वित्त संबंधी हमारे अध्ययनों से उनके राजकोषीय स्वास्थ्य के संबंध में आशावाद हेतु आधार तैयार होता है। हम दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों को मान्यता देते हैं, यदि उनकी समस्या दूर हो गई तो इससे राजकोषीय शक्ति बढ़ेगी। पहली है, सब्सिडियां समाप्त करना जो कि गरीब को सीधे लक्ष्यित नहीं हैं अथवा अनुपयुक्त हैं और अधिकांश कर छूटों को समाप्त करना जोकि स्पष्ट रूप से भेदभाव पूर्ण हैं। जहां किसी भी सरकार के लिए राजकोषीय समेकन एक कठिन काम है और ऐसा खासतौर पर हमारे प्रजातांत्रिक मजबूरियों के चलते होता है लेकिन फिर भी इस संबंध में काफी कुछ किया जा सकता है।

तीसरी बात, और संभवतः सबसे चुनौतीपूर्ण मुद्दा कृषि के विकास से संबंधित है। एक ओर जहां मजदूर वर्ग का 60 प्रतिशत कृषि पर निर्भर है वहीं कृषि जन्य सकल देशी उत्पाद वृद्धि आबादी की वृद्धि दर से मात्र मामूली रूप से अधिक है जोकि तेजी से गरीबी घटाना सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। तथापि, भारत में गरीबी के संबंध में किए गए हाल ही के सर्वेक्षणों के परिणाम सुधार अवधि के प्रारंभ से पूरी तरह से तेजी से गरीबी कम करने के संबंध में आशाओं के लिए आधार प्रदान करते हैं। कृषि के क्षेत्र में अधिक तेज वृद्धि सुगम बनाने के लिए बढ़े हुए सरकारी और निजी निवेश के संपूरण हेतु विधायी, संस्थागत और दृष्टिकोण परिवर्तनों की आवश्यकता है। नीति निर्माताओं के बीच इस मुद्दे को ज्यादा मान्यता मिल रही है।

चौथी बात, अपनी आबादी के बड़े भाग को शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी जरूरी आम सेवाएं प्रदान करना एक बड़ी संस्थागत चुनौती है। यह बात बड़ी शिद्दत से महसूस की जा रही है कि शिक्षा ही गरीब को वृद्धि की प्रक्रिया में भाग लेने की शक्ति प्रदान करेगी और गरीब तक न्यूनतम पहुंच के अर्थ में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता के भारी अंतर को भरने की आवश्यकता है। इसी प्रकार, तेजी से

बढ़ रही और वैश्विक हो रही अर्थव्यवस्था के दबावों के साथ-साथ विशेषकर सामयिकता के अर्थ में, न्यायिक प्रक्रियाओं को तदनुरूप बनाए जाने की आवश्यकता है। इन सब पर जबरदस्त चर्चा हुई है और आशा की जाती है कि इस संबंध में महत्वपूर्ण सुधार होंगे।

भारतीय अर्थव्यवस्था की शक्तियां

निश्चित रूप से हमारी अर्थव्यवस्था की कुछ शक्तियां हैं जिन्हें आसानी से मात्रात्मक रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता और यहां मैं उन पर प्रकाश डालना चाहूंगा।

पहली शक्ति है, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्नातकों की एक विशाल संख्या और अंग्रेजी जानने वाले लाखों लोग अब तक उभरते भारत के लिए शक्ति के स्रोत हैं। भारत भारी विविधताओं के बावजूद विभिन्न धर्मों, भाषाओं और समेकित संस्कृति के सद्भावपूर्ण सह-अस्तित्व वाला देश है। भारत में बहु भाषाओं की जानकारी यहां के लोगों को बहु भाषा वातावरण को बेहतर तरीके से अपनाने के लिए तैयार करती है जो उन्हें बड़ी आसानी से अंतरराष्ट्रीय प्रणाली में रच-पच जाने में सहायक होती है।

दूसरी शक्ति है, भारत का विश्व में सबसे बड़ा जनतंत्र होना जो उसे सबसे अलग रखता है। स्वतंत्र प्रेस की मौजूदगी ज्यादतियों के विरुद्ध कुछ सुरक्षा प्रदान करती है और सरकार को सभी स्तरों पर सतर्क और जवाबदेह बनाती है।

तीसरी शक्ति है, राजनैतिक वातावरण जिसकी विशेषता है, केंद्र और अनेक राज्यों, दोनों में ही गठबंधन कैबिनेटों और आवधिक चुनावों के बावजूद राजनीतिक प्रणाली की स्थिरता।

चौथी, यह कि आनेवाले कुछ दशकों में भारत विश्व में सबसे युवा देश होगा। यह 'जन संपदा लाभ' अपरिहार्य लाभ के रूप में देखा जा रहा है बशर्ते कि इसका लाभ उठाने के लिए कौशल उन्नयन और सुदृढ़ संचालन जैसी पूर्व शर्त को वास्तविकता का जामा पहनाया जा सके। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि जन संपदा की गुणवत्ता के विकास का यह क्रम एक दीर्घावधि तक चलेगा क्योंकि केरल से उत्तर प्रदेश तक भारत के राज्य इस परिवर्तन के विभिन्न चरणों में हैं।

पांचवीं शक्ति है, भारत की कारोबारी संस्कृति। कारोबारी माहौल के अर्थ में, अति व्यापक आधार वाले बढ़ते उद्यमी वर्ग वाली अर्थव्यवस्था की बाजारोन्मुखता सहित जोरदार वृद्धि एक 'बॉटम अप' प्रक्रिया है। संभवतः ये प्रवृत्तियां भारत के बढ़ते उद्यमी वर्ग के बीच जो कि प्रोफेशनलिज्म से ओत-प्रोत है और वैश्विक स्पर्धा की दौड़ में शामिल होना चाहता है, नवोन्मेष के प्रति झुकाव में परिलक्षित हैं।

छठी बात यह है कि यहां कामगारों को आंदोलन करने, अपने विचार व्यक्त करने और अपने अधिकारों की स्वतंत्रता है, विशेषकर यूनियन गतिविधियों के माध्यम से, जो कई बार कुछ बदलाव करना कठिन बना देती है, लेकिन इसके चलते सक्रियता रहती है और स्पर्धा का सामना करने के लिए समय पर सुधार सुनिश्चित करती है। भारत में श्रमिकों का गमनागमन कभी-कभी मौसमी होता है और यह एक खास तरह के काम जैसे कि बड़ी भवन निर्माण गतिविधि से भी संबंधित रहता है।

भारत के लिए मौजूदा प्राथमिकताएं

मौजूदा संदर्भ में भारत के लिए असली चुनौती एक साथ हो रहे अनेक परिवर्तनों को संभालना है।

पहला, उच्च वृद्धि के लिए देशी अर्थव्यवस्था में हो रहा संरचनात्मक बदलाव।

दूसरा, पिछड़ रही आपूर्ति प्रतिक्रिया।

तीसरा, तेल आपूर्ति का आघात और उसके बाद दूसरा, मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं को प्रभावित करने वाली प्राथमिक वस्तुएं।

चौथा, नकदी की वैश्विक प्रचुरता, वैश्विक असंतुलनों के परिणामों और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में जोखिमों के अचानक पुनर्मूल्यन का प्रबंध।

पांचवां, सीमापारीय पूंजी प्रवाहों में अत्यधिक अस्थिरता की संभावनाएं।

इन चुनौतियों का सामना किया जा रहा है जिसमें अनेक समझौताकारी तालमेलों का समावेश है। जबकि सुधारों के एक सेट के लिए पूर्व-वचनबद्धताएं उपयोगी हैं, सतत गतिविधियों के लिए सक्रिय बने रहने हेतु नीतियों में कुछ नमनीयता जरूरी है। सुधारों के इस कदम की समीक्षा करने, तर्कसंगत बनाने और सतत संतुलित करने के लिए ऐसी नमनीयता और वित्तीय बाजारों को प्रभावित करने वाले विभिन्न उपायों का क्रम निर्धारण वांछनीय है तथा साधारणतया वित्तीय बाजारों को इन गतिविधियों की सूचना दी जाती है। वास्तव में नीतिगत उपायों में ऐसी नमनीयता के साथ वित्तीय बाजारों की सुगमता के लिए ये आधार हैं जो समग्र वित्तीय स्थिरता में योगदान देते हैं।

अंत में, यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि भारत में ये रूपांतरकारी परिवर्तन सामान्य रूप में सार्वजनिक नीति के माध्यम से और विशेष रूप में मौद्रिक नीति के माध्यम से सुचारु रूप से संभाल लिए जाएंगे। इस सभा के लिए विशेष रुचि की बात यह है कि भारत वैश्विक असंतुलनों में सकारात्मक रूप से अथवा नकारात्मक रूप से किसी भी तरह कोई योगदान नहीं देता। कंपनी, बैंकिंग और सरकारी तुलनपत्रों को अनावश्यक रूप से करेंसी जोखिमों में नहीं डाला जाता। वित्तीय क्षेत्र, जिसमें वित्तीय बाजार शामिल हैं, सामान्यतः मजबूत और काफी दक्ष माने जाते हैं। मूल्यस्थिरता पर संदर्भाधीन पुनः जोर वाले प्रोत्साहनमूलक नीतिगत परिवेश में सतत वर्तमान वृद्धि का आवेग बनाए रखने की काफी अच्छी संभावनाएं दिखाई देती हैं।